स्वामी विवेकानंद के समय देश किन परिस्थितियों से जूझ रहा था ?

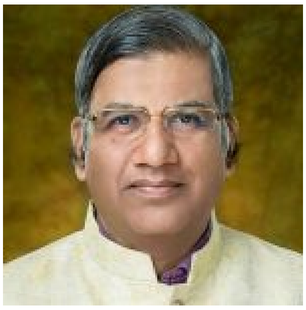

सन १८६३ के प्रारंभ में, १२ जनवरी को स्वामी विवेकानंद का जन्म हुआ हैं. उस समय देश की परिस्थितियाँ कैसी थी ?

१८५७ के क्रन्तियुध्द की ज्वालाएं बुझ रही थी. यह युध्द छापामार शैली में लगभग १८५९ तक चला. अर्थात् स्वामी विवेकानंद के जन्म के लगभग ४ वर्ष पहले तक. इस स्वतंत्रता संग्राम में भारत के स्वाभिमान की, भारत के स्वतंत्र मानसिकता की 'तात्कालिक' पराजय हुई थी. इस क्रांति युध्द में जीत के पश्चात अंग्रेजों ने स्थानीय प्रजा पर जो जुल्म ढाए, जो अत्याचार किये, वो पाशविकता और बर्बरता से भी बदतर थे.
जहाँ – जहाँ क्रांति युध्द भड़का था, वहां – वहां अंग्रेजों ने 'बिज्जन' किया. इसका अर्थ होता हैं, उस गाँव / शहर के छ: वर्ष के बालक से तो साठ वर्ष के बूढ़े तक, सभी को अंग्रेजों ने ख़त्म किया, मार दिया. ऐसा 'बिज्जन' झाँसी में हुआ, कानपुर के पास बिठुर में हुआ, मेरठ के आस-पास के गांवों में हुआ. अर्थात सन्देश स्पष्ट था – अंग्रेज, भारतीयों के मन में इतनी जबरदस्त दहशत निर्माण कर देना चाहते थे की आनेवाले सौ वर्षों तक भारतीयों के मन में न स्वतंत्रता का विचार आएं, न स्वाभिमान की लहर उठे..!

और अंग्रेज बहुत हद तक इसमें सफल भी रहे. क्रांति युध्द समाप्त होने के पश्चात देश की परिस्थिति कैसी थी ? शांत... शमशान जैसी शांतता. स्वतंत्रता यह शब्द जैसे शब्दकोष से निकल गया था.* राजकीय चेतना शून्य थी. बंगाल और महाराष्ट्र में कुछ सामाजिक हलचल दिख रही थी. किन्तु वह भी अंग्रेजियत के समर्थन में थी. बंगाल का ब्राम्हो समाज हो, या राजा राम मोहन राय ; महाराष्ट्र के लोकहितवादी देशमुख हो या न्यायमूर्ति रानडे. . . इन सभी की सोच अंग्रेजी परंपरा से जुड़ रही थी.

इस अंग्रेजियत ने ऐसा जादू चलाया कि सामान्य व्यक्ति की पोशाख का 'कोट' यह अविभाज्य अंग बना. शुध्द भारतीय धोती और उसपर अंग्रेजी कोट ! उस समय के पीतल में ढली बालकृष्ण की मूर्ति हमारे घर की पूजा में हैं, जिसके सर पर अंग्रेजी हैट हैं..!

अर्थात चेतनाहीन, जड़त्व धारण किया हुआ हमारा भारत और मानसिकता अंग्रेजों को ईश्वर मानने की..!

स्वामी विवेकानंद का जन्म ऐसे विषम परिस्थिति में हुआ हैं. १८६३ का निर्जीव, निस्तेज, भारत. . . और

मात्र ३९ वर्ष और ५ महीने में ऐसा कौनसा जादू चल जाता है, कि सारा देश गरजने लगता हैं..?१९०२ में स्वामी विवेकानंद की मृत्यु के मात्र तीन वर्ष बाद बंगाल में 'बंग-भंग' का अभूतपूर्व आन्दोलन खड़ा होता है. ऐसा यशस्वी आन्दोलन, जिसमे अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ता हैं और आन्दोलन प्रारंभ होने के मात्र छह वर्षों में उन्हें अपनी राजधानी कलकत्ता से दिल्ली में स्थलांतरित करना पड़ती हैं !

१८६३ का बुझा बुझा सा दिखनेवाला भारतवर्ष १९०२ में दहाड़ रहा है. . . जागृत ज्वालामुखी सा लग रहा है. . . इस 'संपूर्ण परिवर्तन' (complete transformation) में स्वामीजी की भूमिका निश्चित है।

१८८६ में अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी की मृत्यु के पश्चात स्वामी विवेकानंद के मन में परिव्राजक बन कर देशाटन करनेकी योजना हैं. उन्हें इस देश को समझना है. किन्तु जिम्मेदारियों के चलते तत्काल निकलना संभव नहीं हो रहा हैं. लगभग २ वर्ष के पश्चात १८८८ में स्वामी देशाटन को निकलते हैं. देशाटन का यह क्रम १८९३ के मध्य तक चला हैं, यानि लगभग चार से पांच वर्ष. इस अंतराल में स्वामीजी ने मानो घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में भारतवर्ष की परिक्रमा की है।. इस संपूर्ण प्रवास में स्वामीजी अनेक लोगों से मिले हैं. अनेक नवयुवकों से उन्होंने संवाद किया है। अनेक भाषण उन्होंने दिए है. उनके सभी संबोधनों का सूत्र है – 'हे भारतीयों जागो.. उठो.. तुम में अपार शक्ति है, अद्भुत चेतना है. उसका उपयोग करो. अमृत के पुत्र हो तुम.. समाज में जाओ, समाज बलशाली बनेगा, तो देश सुदृढ़ होगा…!

स्वामी जी के विचारों की मोहिनी इतनी जबरदस्त रहती थी की लोग उनके पास खिंचे चले आते थे. उनके पहले शिष्य, हाथरस के स्टेशन मास्टर श्री शरदचंद्र गुप्ता, जिन्हें बाद मे स्वामी सच्चिदानंद कहा गया, स्वामीजी के विचारों से ज्यादा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थे. किन्तु अधिकतम स्थानों पर स्वामी जी के भाषणों से प्रभावित होकर लोग उनसे जुड़ना चाहते थे. अलवर के प्रवास में स्वामीजी के पास वहां के युवक संस्कृत सीखने और उस बहाने स्वामीजी को सुनने के लिए आते थे. ये सारे युवक इतने प्रभावित थे, की जब स्वामीजी अलवर छोड़ कर जाने लगे तो ये बारह – पंद्रह युवक भी उनके साथ हो लिए. स्वामीजी ने बड़े प्रयास से उनको अपने साथ आने से रोका.

लाहोर की सभा में स्वामीजी का भाषण सुनकर तीर्थराम गोस्वामी नाम के युवा प्राध्यापक इतने प्रभावित हुए, की उनके पत्नी की अल्पायु में मृत्यु होने के पश्चात वे सर्वसंग परित्याग कर स्वामीजी द्वारा बताएं मार्ग पर चलने लगे. आगे यही युवा प्राध्यापक, *स्वामी रामतीर्थ* नाम से देश – विदेश में विख्यात हुए.

ऐसे अनगिनत उदहारण हैं. स्वामीजी सबसे पहले १८९० में जब अल्मोड़ा गए थे, तो स्वाभाविकत: न शिष्य परिवार था, और न ही कोई संपर्क. अल्मोड़ा के खजांची बाजार में श्री बद्री सहाय टूलधारी जी रहा करते थे. अल्मोड़ा के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और लाला बद्री सहाय नामसे जाने जाते थे. टूलधारी यह उन्होंने लिया हुआ उपनाम था. उन्होंने स्वामीजी को अपने यहाँ आमंत्रित किया. स्वामीजी उस प्रवास में और बादमे १८९७ के मध्य में जब पुन: अल्मोड़ा गए थे, तब भी बद्री सहाय जी के ही यहाँ रहे. वहाँ स्वामीजी से चर्चा होती थी. चर्चा में स्वामीजी ने बताया की 'ईश्वर की मूर्ति को हमें कुछ समय के लिए बाजू में रखना चाहिए. समाज पुरुष यही हमारा ईश्वर है. समाज की और राष्ट्र की पूजा याने साक्षात्

ईश्वर की पूजा..!' स्वाभाविकत: बद्री सहाय जी ने पूछा, 'यह बात किसी वेद, उपनिषद या पुराण में लिखी हैं ? और यदि नहीं, तो हम आपकी बात क्यूँ माने ?'

स्वामीजी ने तुरंत वेद और उपनिषदोंमे उल्लिखित ऋचाओं के सन्दर्भ दिए. बद्री सहाय जी को आश्चर्य हुआ. उन्होंने सारे सन्दर्भ स्वामी जी से उतार लिए और बाद में वाराणसी जाकर उन ग्रन्थों का अध्ययन किया. स्वामीजी ने बताए हुए विचार उन ग्रंथों में मिल रहे थे. बाद में स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात बद्री सहाय जी ने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी, जिसे लोकमान्य तिलक ने आशीर्वचन दिए. १९२१ में यह पुस्तक, दैशिकशास्त्र नाम से प्रकाशित हुई. स्व. दीनदयाल उपाध्याय इस पुस्तक से बड़े प्रभावित थे. उन्होंने राष्ट्र के 'चिती' और 'विराट' की संकल्पनाएँ इस पुस्तक से ही ली थी.

ऐसे अनेक उदाहरण हैं. स्वामीजी की दृष्टि राष्ट्रीय थी. उन्होंने कभी भी कर्मकांड का आडम्बर नहीं मचाया. जब भी उद्बोधन दिया, उसमे समाज का, राष्ट्र का विचार प्रमुखता से दिया.*

अनेक क्रांतिकारियोंके स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण मठ के अन्य सन्यासियोंसे गहरे सम्बन्ध थे. अंग्रेजों ने स्वामीजी पर नजर भी रखी थी. सन १९०१ का कांग्रेस का राष्ट्रीय अधिवेशन कलकत्ता में था. दिसंबर में हुए इस अधिवेशन के समय स्वामीजी कलकत्ता में ही थे. किन्तु उनका स्वास्थ ठीक नहीं था. कांग्रेस के अधिवेशन में आनेवाले सभी प्रमुख नेता स्वामीजी से मिलने बेलूर मठ में पहुँचते थे. किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण स्वामीजी उनसे नहीं मिल सके. गांधीजी भी उन नेताओं में से थे, जो स्वामीजी से नहीं मिल सके.

किन्तु लोकमान्य तिलक भाग्यशाली रहे. स्वामीजी से उनकी भेंट हुई – एक / दो दिन नहीं, तो पूरे छः / सात दिन रोज लोकमान्य तिलक बेलूर मठ में आते थे और स्वामीजी से उनका वार्तालाप होता था. वहाँ उपस्थित स्वामी निश्चयानंद, जो रामकृष्ण मठ के एक मराठी भाषिक संन्यासी थे, ने लिखा है कि इन दो महापुरुषों के वार्तालाप के समय अन्य शिष्यों की उपस्थिति वर्जित रहती थी.

अंग्रेजो की इस भेंट पर बारीक नजर थी. उन्होंने इसके और अधिक तथ्य खोजने के लिए एक कमीशन का गठन किया था. अंग्रेजों को इसमें एक बड़ी साजिश की बू आ रही थी.

इतनी बात तो निश्चित है, कि इस भेंट के बादसे ही तिलक जी के वक्तव्यों में 'दरिद्रनारायण' यह शब्दप्रयोग आने लगा. 'नर सेवा – नारायण सेवा' की बात वो करने लगे.

अर्थात हम किसी भी पहलू से देखें तो यह बात सुनिश्चित है कि स्वामी विवेकानंद की प्रेरणा क्रांतिकारियों को, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को मिली. स्वातंत्र्यवीर सावरकर मार्सेलिस में पकडे जाने के बाद, काले पानी (अंडमान) जाने तक रोज स्वामी जी की कर्मयोग यह पुस्तक पढ़ते थे. जब अंडमान में इस पुस्तक को ले जाने की अनुमति नहीं मिली तो वहाँ पर सत्याग्रह करके सावरकर जी ने कैदियों के लिए वाचनालय बनवाया और उसमे सबसे पहले 'विवेकानंद साहित्य' मंगवाया.

सोते हुए भारतीय लोगों में चैतन्य रस निर्माण करना, उनमे आत्मविश्वास जगाना और उन्हें समाज और राष्ट्र कार्य से जोड़ना यह स्वामी विवेकानंद की प्रमुख उपलब्धि रही, जिसके कारण भारतीय स्वतंत्रता

संग्राम को बल मिला और अंग्रेजों के विरोध में देश खडा होने लगा..!*

(लेखक ऐतिहासिक व राष्ट्रीय विषयों पर शोधपूर्ण लेख रोचक शैली में लिखते हैं और इनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी है)
#स्वामी_विवेकानंद ; #Swami_Vivekanand; #AmritMahotsav